अलग पहचान के बिन्दु,
महादेवी की प्रतीक्षा, 12
; देह नहीं, दिमाग भी है,
ृ० 22। 6. इण्डिया टुडे,
3. रणवीर रांग्राः भारतीय
7, पृ० 23। 10. इण्डिया
सन्दर्भ, अमृता की डायरी,
क्सप्रेस, 10 जून 1984
फर, पृ० 47। 14. डॉ०
और नारी का आत्मसंघर्ष,
में स्त्री-दृष्टि : (हंस) पृ०

पुरादाबाद

*वह पहली हिन्दी पत्रिका
वरी नेहरू के सम्पादन
गाँधीवादी सुधारकों से
परिवर्तनवादी लेखकों के
रत की सम्भवतः पहली
थी। 'गृहलक्ष्मी', 'आर्य
जादी और अधिकारों के
हिन्दी साहित्यिक पत्रिका
रस्वती', 'प्रभा', 'प्रताप',
में स्त्रियों के सामाजिक
ख प्रकाशित होते थे और*

**–कात्यायनी**
कुछ ज्वलन्त से साभार)



# स्त्री दशा को दिशा देता स्त्री लेखन

• पूनम सिंह

मनुस्मृति का यह चिर-परिचित श्लोक—'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते स्मंते तत्र देवताः' इस बात की ओर संकेत करता है कि प्राचीन काल भारतीय महिलाओं का स्वर्णिम काल था। पुरुष प्रधान व्यवस्था होने के उपरान्त भी महिलाओं का समाज में सम्मान था, प्रतिष्ठा थी और उन्हें आगे बढ़ने की पूरी स्वतन्त्रता थी। अपनी अगाध प्रतिभा व आध्यात्मिक ज्ञान से वे समाज को यह बताने में सक्षम हुई कि वे पुरुषों से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं, परन्तु प्राचीन काल से लेकर अब तक पुरुष प्रधान व्यवस्था चली आ रही है और पहले की अपेक्षा आज यह व्यवस्था अत्यन्त व्यापक व सबल रूप से स्त्रियों पर हावी होती दिखाई पड़ती है। पुरुष जहाँ से जीना शुरू करता है, स्त्री को वह शुरुआती जमीन कभी प्राप्त नहीं हुई बल्कि इतिहास उठाकर देखें तो पाएँगे कि पुरुष ने बाह्य जगत में स्त्री को अविकसित चरण में ही रखा हुआ था, यह तो स्त्री ही है जिसने आधुनिक युग में संघर्ष करते हुए अपने आप को विकसित किया।

यह सर्वविदित तथ्य है कि सबसे पहले स्त्री ने ही पुरुष को घर बनाकर रहने की प्रेरणा दी, परन्तु आज उसी घर में स्त्री को मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक आदि विभिन्न रूपों में घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ रहा है। परिणाम स्वरूप स्त्री का अस्तित्व न केवल परिवार में बल्कि परिवार के बाहर भी कमजोर हुआ है। पुरुष पहले भी स्त्री पर अपना अधिकार चाहता था और आज भी वह यही चाहता है। यही कारण है कि वह स्त्री को अपने अधीनस्थ स्थिति में बनाये रखने के लिए संस्कृति, जाति, धर्म, मूल्यों, परम्पराओं आदि का प्रयोग उसके शोषण के रूप में करता है। प्रत्येक शासित शोषित नहीं होता, परन्तु प्रत्येक स्त्री शासित भी है और शोषित भी। स्त्री की यह दशा देखते हुए जयशंकर प्रसाद की यह विख्यात पंक्तियाँ व्यंग्य ही प्रतीत होती हैं—

"नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग पगतल में,
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में"[1]

पुरुष सत्ता संस्कृति का सहारा लेकर स्त्रियों को आगे बढ़ने से रोकने का प्रयास करती है जैसे स्त्रियों का पहनावा कैसा हो, विधवा-विवाह का विरोध, विधवाओं को मन्दिरों में जाने से रोकना आदि वे संस्कृति की आड़ में ही करते हैं ऐसा नहीं है कि स्त्री के जीवन में संस्कृति

महत्वपूर्ण नहीं है या फिर 'स्त्री मुक्ति' के समर्थक संस्कृति की अवज्ञा करना चाहते हैं। स्त्री केवल उस संस्कृति को नहीं चाहती जहाँ संस्कृति दमनकर्ता के हाथ में एक हथियार की तरह हो। स्त्री को स्वभाव से चंचल एवं पुरुषों के मुकाबले काफी हीन कहा गया है। मनु को पक्का भरोसा है कि स्त्री को नियन्त्रण में रखा जाना चाहिए क्योंकि उसकी कामना को सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। स्त्री के प्रति विद्वेष से भरी ऐसी ढेरों उद्घोषणाएँ हैं। पुरुषों की इन चालों को धर्म ने भी ज्यादा मजबूती दी। मानव समुदाय का अर्थ स्त्री व पुरुष दोनों ही समझा जाता है केवल पुरुष नहीं। जाति व धर्म के आधार पर स्त्री सबसे निचली सीढ़ी पर है क्योंकि पिता या पति द्वारा ही उसकी जाति और वर्ग भी पहचाना जाता है। यह परम्परा आज की नहीं बल्कि मीराबाई के समय में भी विद्यमान थी, अपितु उससे पहले से ही चली आ रही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था व स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में असमानता मीरा की इन पंक्तियों में विद्रोह के रूप में दिखायी पड़ती हैं—

"लोकलाज कुलकाण जगत की, दी बहाय ज्यूं पांणी।
अपने घर का पर्दा कर लो, मैं अबला बौरांणी।।"[2]

वर्गीय ढाँचा ही जातिगत ढाँचा है। स्त्री चाहे किसी भी वर्ग या वर्ण की हो उसका वर्ग एवं वर्ण तो पुरुष के सन्दर्भ में ही परिभाषित होता है, उसकी जाति तो विवाह के बाद ही स्थापित होती है। सन्तान भी पिता के नाम से ही जानी जाती है। ब्राह्मण कन्या यदि शूद्र से विवाह करे और शूद्र सन्तान की माँ बने तो सन्तान शूद्र ही कहलाएगी ब्राह्मण नहीं। स्त्री अपनी सन्तान को नौ माह गर्भ में रखकर प्रसव पीड़ा सहकर जन्म देती है, परन्तु जन्म के पश्चात् वह पिता के ही नाम, जाति, धर्म से पहचाना जाता है, स्त्री का उस पर कोई अधिकार नहीं होता। स्त्री गर्भ को एक साधन के रूप में देखा जाता है, जिस पर पुरुष सत्ता नियन्त्रण चाहती है। महत्व तो केवल बीज का है जिसका रक्षक पुरुष है। पुरुष के पास बीज का होना एक प्राकृतिक घटना है मगर इसको श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण मानना ऐतिहासिक घटना है। समय चाहे जितना भी बदल गया हो परन्तु कुछ प्रश्न स्त्रियों के लिए वैसे ही बने है जैसे पहले थे—क्यों स्त्री को अपने पिता या पति की ही जाति, वर्ण से जाना जाता है? क्यों स्त्री को ही विवाह के पश्चात् अपना नाम व पहचान बदलनी पड़ती है? क्यों जन्म के अलावा स्त्री का उसकी सन्तान पर कोई अधिकार नहीं होता? आज घर और बाहर स्त्री की समस्याओं और विडम्बनाओं को रघुबीर सहाय की यह कविता बेहद सुन्दर ढंग से रखती है—

"पढ़िए गीता
बनिए सीता
फिर इन सबमें लगा पलीता
निज घर-बार बसाइए
होंए कटीली
लकड़ी सीली

ा चाहते हैं। स्त्री केवल
यार की तरह हो। स्त्री
नु को पक्का भरोसा है
नहीं किया जा सकता।
ं को धर्म ने भी ज्यादा
केवल पुरुष नहीं। जाति
ते द्वारा ही उसकी जाति
के समय में भी विद्यमान
व स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में
–

की हो उसका वर्ग एवं
वाह के बाद ही स्थापित
यदि शूद्र से विवाह करे
स्त्री अपनी सन्तान को
पश्चात् वह पिता के ही
नहीं होता। स्त्री गर्भ को
ती है। महत्व तो केवल
प्राकृतिक घटना है मगर
जतना भी बदल गया हो
को अपने पिता या पति
न् अपना नाम व पहचान
ोई अधिकार नहीं होता?
ाय की यह कविता बेहद



आँखें गीली
घर की सबसे बड़ी पतीली
भर-भर भात पकाइए।''[3]

स्त्री की जिस खामोशी ने उसे कैद कर रखा था वह अब तार्किकता और प्रश्नाकुलता की ओर बढ़ रही है। आज स्त्री भोग्या से 'वस्तु के रूप' में तब्दील हो गयी है। भारतीय समाज में स्त्री की गुलामी का इतिहास जितना पुराना है, उस गुलामी से मुक्ति के लिए स्त्री के संघर्ष का इतिहास भी उतना ही पुराना है। स्त्री की दयनीय दशा को दिशा देने का एक सफल प्रयास स्त्री लेखन ने किया है। 'नारी मुक्ति' के सवाल पर अनेकों बार बहसे हुईं परन्तु इसको एक प्रवाहपूर्ण दिशा स्त्री लेखन द्वारा ही प्राप्त हुई है। आज की स्त्री लेखिकाओं ने नारी के उन मुद्दों को उठाने का कार्य किया है जिस पर कभी पुरुष लेखकों ने ध्यान देने व उनके बारे में लिखने का प्रयास नहीं किया। आज भी समाज में स्त्री के साथ हो रहे लिंग व जातीय भेदों को लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में और विस्तृत रूप से उजागर किया है। नारी के सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक, पतन को स्त्री लेखन के द्वारा लेखिकाओं ने पाठकों के सामने रखा है उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी सम्बन्धित समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। स्त्री लेखन स्त्री की आकांक्षाओं का दर्पण है। यह स्त्री की मानवीय इयत्ता को पाने और जीने का स्वप्न है, मुक्ति की राहों के अन्वेषण का संघर्ष है, और उन राहों पर अविराम चलने की संकल्प दृढ़ता भी। स्त्री लेखन स्त्री मानस के तलघर को बिना किसी छेड़छाड़ के सामने रखता है जहाँ व्यवस्था के विरोध में उफनती हुंकारों के साथ व्यवस्था में परित्राण पाने की बेचारगियाँ भी है और भेड़ की तरह जिबह होने की यंत्रणा के साथ भेड़िया बनकर दूसरों की लील जाने की कुटिलताएँ भी। इसे मानवीय दुर्बलताओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति कहिए या अन्तर्विरोधों का स्वीकार-स्त्री लेखन पारम्परिक 'माइण्ड सेट' दोनों की ताकत को एक ठोस सामाजिक-मानसिक सच्चाई और चुनौती के रूप में सतह पर लाता है। स्त्री लेखन के इस प्रयास से महिलाओं को एक आशा व सम्बल प्राप्त हुआ है। जिन समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर वे खोज रही थी उन प्रश्नों के जवाब स्त्री लेखन सामने लाता है। आज समस्त साहित्य में स्त्री लेखन अत्यन्त सहजता, गम्भीरता और बिना किसी अवरोध के अपने विवादों, व्यथाओं व तकलीफों को व्यक्त कर रहा है। ''मृदुला गर्ग के अनुसार 'नारी चेतना' अंग्रेजी के फेमिनिज्म (Feminism) का सार्थक अनुवाद है। इसके अनुसार हर वह स्त्री व पुरुष फेमिनिस्ट (Feminist) हैं जो नारी चेतना की दृष्टि से सम्पन्न है।''[4] स्त्री लेखन मानवीय अधिकारों की संघर्षपूर्ण माँग करने वाला साहित्य है। स्त्री साहित्यकार जब सामाजिक सच्चाइयों और समाजशास्त्रीय आँकड़ों को निर्विकार दृष्टि से देखती हैं तो रचना अपने आप ही सृजनात्मक ऊँचाइयों पर पहुँच जाती है। पिछले चार-पाँच दशकों के स्त्री लेखन ने स्त्री के कुछ तीखे, ज्वलन्त प्रश्नों, अन्तर्विरोधों और विरोधाभासों को अपने लेखन के माध्यम से प्रस्तुत किया है जिससे स्त्री लेखन की एक अलग पहचान बनने लगी है। असल में 1990 के बाद स्त्री लेखिकाएँ स्त्री की नियति और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की रिक्ति को लेकर बिसूरने की जड़ता से उभरकर समाज के लिए कुछ पुख्ता और रचनात्मक करना चाहती हैं। भन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, नासिरा

शर्मा आदि की रचनाओं में नारी के अधिकारों के प्रति सजगता दिखाई देती है। इनका लेखन आक्रामक, तीखा और पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना से भरा है। जो आज की स्त्री को खुलकर शोषित समाज के खिलाफ बोलने का साहस प्रदान करता है। इन लेखिकाओं ने अपने लेखन में मुख्य रूप से स्त्रियों के प्रति हो रहे धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक अन्याय के विरोध में आवाज उठाई है। आज का स्त्री लेखन पूर्व के स्त्री लेखन से कहीं अधिक सशक्त, स्वतन्त्र व समाज में स्त्री के अस्तित्व को उभारने वाला लेखन है। पूर्व में होने वाले स्त्री लेखन में स्त्री की परम्परागत छवि का ही निरूपण था, किन्तु उसके पीछे जो राजनीतिक दृष्टि, विचारधारा तथा पितृसत्तात्मक नैतिक मूल्य काम करते थे उस पर विचार नहीं होता था किन्तु आज स्त्री लेखन का एक नया स्वरूप उभर कर सामने आता है। आज स्त्री ने बाहर पुरुष सत्ता के समक्ष स्वयं को साबित करने का पूरा प्रयास किया है जो उनके लेखन द्वारा दृष्टिगोचर होता है। जब तक स्त्री लेखन अन्याय, अत्याचार का प्रतिरोध नहीं करता, नारी की सुरक्षा के लिए संघर्ष नहीं करता, तब तक स्थितियाँ नहीं बदलेंगी। स्त्री लेखन का सबसे अहम् दायित्व है स्त्री पाठिकाओं को झकझोरना, उनके पारम्परिक जर्जरित संस्कारों को तोड़ना जिनमें वे बुरी तरह जकड़ी हुई है। इसके बिना स्त्री समाज की सोच को नहीं बदला जा सकता। ''स्त्री लेखन से महिलाओं को पूर्ण रूप से 'फीडबैक' (Feedback) मिलता है। स्त्री लेखन स्त्री मन की ही अभिव्यक्ति है। नारी ने नारी की गूँगी पीड़ा को लिखा, उजागर किया उसके मौन को शब्द दिये।''[5] स्त्री लेखन स्त्री समाज को सही दिशा दे रहा है, उसकी चेतना के विकास में सहायक सिद्ध हो रहा है तथा उसके अन्दर के स्वत्व के प्रति जागरूकता उत्पन्न कर रहा है।

खुद अपने आप और अपने युग से दोहरे संलाप की सम्भावना के चलते कई सशक्त महिला लेखन से एक प्रकार की अन्तर्ध्वनि उठती है—''कोई नहीं जानता की अन्दर के पानियों में जो सपना काँपता है, कब असलियत का रूप लेगा।''[6] स्त्री लेखन में नये सन्दर्भ नयी समस्याएँ और नये युग की टकराहटों की ध्वनि है आज का स्त्री लेखन पुरुषार्थवादी समीक्षा का निरीह अनुगामी मात्र नहीं रहा है, वह हर नये और परती जमीन तोड़ने वाले लेखन जैसा आक्रामक और सतर्क है। 'कृष्णा सोबती' का 'डार से बिछुड़ी', 'ज़िन्दगीनामा', 'मित्रो मरजानी', 'ए लड़की', जैसे नारीवादी लेखन ने नारी के दुख दर्द, उसके द्वन्द्वों और तनावों, सन्ताप, अभिशाप व उसकी गूँगी पीड़ा के मौन को वाणी दी है। ऐसे लेखन के केन्द्र में नारी की भयावाह समस्याएँ हैं, पितृ सत्तात्मक मर्यादाओं की तीखी आलोचना है जिसने स्त्री समाज का खुला दमन किया है। इस प्रकार के लेखन से स्त्री की दशा में अत्यन्त व्यापक रूप में सकारात्मक बदलाव आया है।

कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मेहरून्निसा परवेज जैसी लेखिकाओं के लेखन में नारी मुक्ति के लिए जिस चेतना का विकास हो रहा है वह नारी समाज के लिए रामबाण जैसा है। इनके लेखन से नारी की चेतना में अपने अधिकारों, अस्मिता, स्वतन्त्र, अस्तित्व के बारे में तेजी से जागरूकता बढ़ी है। जैसे-जैसे नारी लेखन रचनात्मक और आलोचनात्मक स्तर पर नारियों के लिए जबर्दस्त चेतना जगाने का काम करेगा उसी के अनुरूप स्त्री की दासता से मुक्ति हो सकेगी। यदि स्त्री लेखन दलित, शोषित, पीड़ित स्त्रियों के लिए

देती है। इनका लेखन
आज की स्त्री को खुलकर
ाओं ने अपने लेखन में
ाय के विरोध में आवाज
स्त, स्वतन्त्र व समाज में
न में स्त्री की परम्परागत
रधारा तथा पितृसत्तात्मक
स्त्री लेखन का एक नया
क्ष स्वयं को साबित करने
तक स्त्री लेखन अन्याय,
करता, तब तक स्थितियाँ
ों को झकझोरना, उनके
है। इसके बिना स्त्री समाज
पूर्ण रूप से 'फीडबैक'
री ने नारी की गूँगी पीड़ा
समाज को सही दिशा दे
अन्दर के स्वत्व के प्रति

चलते कई सशक्त महिला
अन्दर के पानियों में जो
सन्दर्भ नयी समस्याएँ और
समीक्षा का निरीह अनुगामी
जैसा आक्रामक और सतर्क
जानी', 'ए लड़की', जैसे
, अभिशाप व उसकी गूँगी
नयावाह समस्याएँ हैं, पितृ
दमन किया है। इस प्रकार
लाव आया है।

मेहरून्निसा परवेज जैसी
हो रहा है वह नारी समाज
धिकारों, अस्मिता, स्वतन्त्र,
री लेखन रचनात्मक और
काम करेगा उसी के अनुरूप
ात, पीड़ित स्त्रियों के लिए



सोचेगा तो उनका लेखन पुरुष लेखन से दो कदम आगे का लेखन सिद्ध होगा। इसी दिशा में स्त्री लेखन निरन्तर अग्रसर हो रहा है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. कामायनी–जयशंकर प्रसाद, पृ० 51, अनुपम प्रकाशन पटना।
2. स्त्री लेखन–स्वप्न और संकल्प, रोहिणी अग्रवाल, पृ० 13, राजकमल प्रकाशन इलाहाबाद।
3. आदमी की निगाह में औरत–राजेन्द्र यादव, पृ० 24, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
4. जया जादवानी का वक्तव्य–हंस।
5. आधुनिक हिन्दी कहानी–नारी चेतना, मर्द आलोचना–मृदला गर्ग, पृ० 24।
6. मेहरून्निसा परवेज, साहित्य वार्षिकी, पृ० 27।



*शोध छात्रा (हिन्दी विभाग), डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, (उ० प्र०)*
*B1/11 सेक्टर–C, अलीगंज, लखनऊ–226024; M. : 7376997084*


*यह जो स्त्री रंगीन पत्रिकाओं, अखबारों के परिशिष्टों और विराट होर्डिंगों से लेकर बड़े और छोटे पर्दे तक पर छा-सी गई है, यह अव्वलन तो एक छाया है, एक छवि है, एक ब्राण्ड है, एक छलना है। दूसरे, छाया भी यह भारत की या पूरी दुनिया की आम स्त्री की, औसत स्त्री की, प्रतिनिधि स्त्री की नहीं, बल्कि विशिष्ट स्त्री की है, अभिजन समाज की स्त्री की है या फिर आम मध्यवर्गीय स्त्री की अधूरी कामनाओं और हीन ग्रन्थि की उपज है। यदि कहीं आम स्त्री की प्रस्तुति है तो वह विशेष दर्पण में प्रतिबिम्बित उसकी एक विकृत-विरूपित प्रतिच्छाया है।*

*वास्तविक स्त्री जिसे स्वतंत्र प्रतियोगिता के दौर में पूँजीवाद ने सामाजिक जीवन के पटल से गायब करके "निकृष्टतम कोटि के उजरती गुलाम" में तब्दील कर दिया था, वह वास्तविक स्त्री, वह बहुसंख्यक आम स्त्री आबादी की प्रतिनिधि स्त्री तो आज भी गायब है, उसके समस्त सामाजिक-सांस्कृतिक-आत्मिक क्रिया-व्यापारों को आज उसकी एक विकृत, कामुक, कामोत्तेजक, रुग्ण मानसिकता वाली छाया सम्पन्न कर रही है। सीता की पुराण कथा का यह नया संस्करण है, जो बीसवीं सदी के अन्त में रचा जा रहा है। वास्तविक स्त्री आज भी उजरती गुलामी, सामाजिक उत्पीड़न और घरेलू बन्दीगृह के उसी अग्निकुंड में जल रही है, कोयला और राख हो रही है।*

**–कात्यायनी**

(कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त से साभार)